मंगलमयी हैं माँ भगवती

भावमयी भगवती से विमुख होने पर जीवात्मा को अज्ञान घेर लेता है। उस पर अहंकार का अंधियारा पूरी तरह से छा जाता है, जिसकी वजह से न तो उसको स्वरूप का बोध रहता है और न कर्त्तव्य का। बस, बचती है तो सिर्फ भ्रम की भटकन। आत्मा एवं परमशक्ति के स्नेहिल, ममतामय एवं शाश्वत संबंधों की डोर तोड़कर, डगर से भटक कर जीव झूठ से झटके खाता घूमता है। जो अपने कभी नहीं थे, उन्हें अपना मानकर अपमान की पीड़ाएं सहता है। क्षण-क्षण परिवर्तनशील संसार को सत्य मानकर भगवती की शाश्वत कृपा से मुंह मोड़ लेता है।

लेकिन मां तो सदा ममतामयी है। वह भला अपनी संतान को कब बिसराती है। वह उसके मुख को अनेक तरह से अपनी ओर फेरने का प्रयास करती है। इस प्रयास में जीवन में अनेक चित्र-विचित्र घटनाक्रम घटित होते हैं। जिसे हम विपदा एवं संकट मानते हैं, वह दरअसल सांसारिक यथार्थता का ज्ञान है। विपदा एवं संकट के पल सांसारिक आकर्षणों का भ्रामक आवरण हटा देते हैं और कराते हैं संसार के सत्य का बोध। ऐसा सच, जिसकी अनुभूति में समझ आता है रिश्ते-नातों का झूठापन, उनका कपट-कलुष, इनके मोह में लिपटा स्वार्थ। इस अनुभूति से वेदना तो होती है, पर चिंतन-चेतना अनायास ही ममतामयी जगत-जननी की ओर मुड़ने लगती है।

ऐसे में परिस्थितियां अपना रुख बदलती हैं और घटनाक्रम एक नया मोड़ लेते हैं। बेबसी और विवशता में ही सही, भावमयी भवानी की ओर कदम मुड़ पड़ते हैं। समूची प्रकृति जाने-अनजाने इसमें सहयोग करती है और तब विपदाएं मंगलमयी माता का मंगलमय विधान बन जाती हैं। शुरू में तो यह बात समझ में नहीं आती, लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, जीवन कष्टों की क्रिया में पड़कर कर्म क्षीण करता है। तब धीरे-धीरे यह सत्य समझ में आने लगता है। फिर संयोग-सुयोग भी ऐसे जुड़ते जाते हैं कि समूची चेतना ममतामयी मां की कृपा अनुभूति पाने लगती है।

> ***सुपथ को भुलाने की वजह से ही बुद्धि पथभ्रष्ट हो जाती है। इसी के साथ शुरू होता है जीवन में व्यतिक्रम का क्रम। बुद्धि जब भटककर मोह के अंधियारे में फंसती-उलझती है, तो कुचक्र, षड्यंत्र रचे जाते हैं। अंतस में निषेध व नकार के भाव पनपते हैं, जो क्रमशः कर्मों में प्रतिबिंबित हैं। इस विपरीत दिशा में चलकर बुद्धि कुसंस्कारों, कुकर्मों के साथ अहितकारी कर्मबीजों एवं जन्म-जन्मांतर तक बने रहने वाले कर्मबंधनों की सृष्टि करती है।***

महाराज सुरथ को भी प्रकृति ने इन्हीं अनुभवों से गुजारा था। विपन्नता विपदा के बावजूद महाराज सुरथ का मोहभंग नहीं हुआ। बार-बार उन्हें अपना अतीत याद आता रहा, यादें आकर्षित करती रहीं और वैभव-विलास के संस्कार सम्मोहित करते रहे। वे मोह के प्रबल भंवर में इस कदर उलझे फंसे कि विवेक उनमें अंकुरित ही नहीं हो पा रहा था। महर्षि मेधा का सुरम्य सामीप्य पाकर भी वे अभी तक उनके सत्संग से वंचित थे। उनके आश्रम का तपोमय वातावरण भी उनकी चेतना को चैतन्य नहीं दे पा रहा था। ऐसे में उनकी भेंट एक नये चरित्र, एक नये व्यक्तित्व वैश्य से होती है।

इन्हें देखकर महाराज सुरथ पूछते हैं, ''तुम क्यों शोकग्रस्त एवं अनमने से दिखाई देते हो ?'' राजा सुरथ का यह प्रेमपूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्य ने उन्हें विनीत भाव से प्रणाम करके वार्तालाप शुरू किया। महाराज सुरथ का वैश्य के साथ मिलन का यह प्रथम अवसर है। यह मिलन जीवात्मा का बुद्धि से मिलन है। आदिजगन्माता से विमुख होने के कारण दोनों ही अभी विपदा एवं विपन्नता से घिरे हैं। जीवात्मा के प्रतीक महाराज सुरथ अपने आत्मस्वरूप से अपरिचित एवं भगवती की भक्ति से वंचित हैं। इसी तरह से बुद्धि के प्रतीक वैश्य सांसारिक गणित में उलझे हैं। उनकी उलझन कुछ ऐसी है, जो किसी भी तरह से सुलझ ही नहीं पा रही है।

उपरोक्त प्रसंग मनुष्य के व्यावहारिक जीवन का सच है। जीवन और जगत में मनुष्य करुणामयी परमेश्वरी से विमुख रहकर संसार के अनेक आघात-प्रतिघात सहन करता है। इसी तरह से बुद्धि संसार व सांसारिक प्रपंचों में उलझकर जीवन एवं जीवात्मा के प्रति अपने कर्त्तव्य को भुला बैठती है। परिणामतः ये दोनों ही अपने पथ व कर्त्तव्य से च्युत होकर दुःखों से घिर जाते हैं। इन दुःखों से छुटकारा तो तभी संभव है, जब दोनों को अपनी भूलों का ज्ञान हो। दोनों ही अपने संबंधों को पहचानें। अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होकर भगवती के शरणापन्न हों। यही अध्यात्म पथ है।

इस सुपथ को भुलाने की वजह से ही बुद्धि पथभ्रष्ट हो जाती है। इसी के साथ शुरू होता है जीवन में व्यतिक्रम का क्रम। बुद्धि जब भटककर मोह के अंधियारे में फंसती-उलझती है, तो कुचक्र, षड्यंत्र रचे जाते हैं। अंतस में निषेध व नकार के भाव पनपते हैं, जो क्रमशः कर्मों में प्रतिबिंबित हैं। इस विपरीत दिशा में चलकर बुद्धि कुसंस्कारों, कुकर्मों के साथ अहितकारी कर्मबीजों एवं जन्म-जन्मांतर तक बने रहने वाले कर्मबंधनों की सृष्टि करती है। इसका समाधान एक ही है - उलटे को उलटकर सीधा करना, अर्थात् बुद्धि का परिमार्जन एवं परिष्कार। उसे यह अनुभूति कराना कि वह जीवात्मा की शाश्वत सहयोगिनी है। इससे उसका अटूट रिश्ता है।

मंदिरों का नगर भुवनेश्वर

लिंगराज मंदिर एक विशाल मंदिर होने के साथ-साथ स्थापत्य व शिल्प में भी अद्वितीय है। वस्तुतः यह आधा शिव व आधा विष्णु मंदिर माना जाता है, इसीलिए यहां बिल्वपत्र व तुलसी दल के साथ पूजा होती है। मंदिर परिसर के चारों ओर पत्थरों की ऊंची दीवार है। प्रथम बार देखने पर हर कोई इसकी भव्यता से दंग रह जाता है। इस पर जितनी बारीकी से काम हुआ है, वैसी आज कल्पना ही की जा सकती है। मंदिर के बाहर कई देव प्रतिमाएं स्थित हैं। मंदिर परिसर में ही लगभग छोटे-बड़े 150 अन्य मंदिर हैं। यहां से 16 कि.मी. दूर हीरापुर में 64 योगिनी मंदिर भी दर्शनीय हैं।

भुवन 14 हैं और चौदह भुवन के ईश्वर हैं भुवनेश्वर, जो कि लिंगराज महादेव शिव के रूप में लिंगराज मंदिर में प्राचीन भुवनेश्वर नगर में विराजमान हैं। वर्तमान भुवनेश्वर शहर उड़िसा राज्य की राजधानी है। इसी से सटा हुआ है ऐतिहासिक एवं पुराना नगर भुवनेश्वर, जहां अति प्राचीनकाल की सनातन धर्म संस्कृति के ध्वंसावशेष सहित अनेक मंदिर अपनी कलाकृतियों को समेटे हुए खड़े हैं। वर्तमान ऐतिहासिक मान्यता के अनुसार इसका काल 700 से 1300 वर्ष पूर्व का है। माना जाता है कि एक समय यहां 7000 मंदिर थे, लेकिन आक्रान्ताओं के आक्रमण, समय की मार, उपेक्षा व उचित रख-रखाव के अभाव में एक के बाद एक मंदिर भूमिसात होते गए। बचे हुए मंदिरों में मध्यकालीन, उत्तर मध्यकालीन, प्राचीन शिल्पकला व स्थापत्यकला के दिग्दर्शन होते हैं।

जनपद भुवनेश्वर में विभिन्न कालखण्डों की जितनी अधिक स्मृतियां दृष्टिगोचर होती हैं, भारत में संभवतः अन्यत्र कहीं उपलब्ध हों। पश्चिम में धौली पहाड़ी के आधार पर मौर्यकालीन सम्राट अशोक का शिलालेख व चिन्ह उपलब्ध हैं। नीचे ही वह नदी बहती है, जो अशोक द्वारा युद्ध में मारे गए लोगों के रक्त से लाल होकर बहुत दिनों तक प्रवाहित होती रही थी और राजकुमारी पदमा की स्त्री सेना के साथ युद्ध की ललकार ने अशोक को शस्त्र छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया था तथा रक्तरंजित धारा ने उसकी साम्राज्य बढ़ाने की आकांक्षा पर रोक लगा दी थी और वह बौद्ध मत धर्म का अनुयायी बन गया था।

पूर्वी भाग में हैं दो पहाड़ियां खण्डगिरि व उदयगिरि। जहां ईसापूर्व के खारवेल नरेश के महल की गुफाएं व हाथी गोम्फा (गुफा) तथा जैन मंदिर अवस्थित हैं। ईसा पूर्व से पश्चात तक यहां चेदी राजवंश के राजाओं का शासन था, जो जैन धर्म के अनुयायी थे। आगे चलकर पूर्वी गंग राजवंश का शासन स्थापित हुआ, जो भगवान श्रीकृष्ण के वंशधर हैं। बीच में बौद्ध धर्म के शासकों के कारण इस क्षेत्र में बौद्ध स्मारक दिखाई पड़ते हैं। यहां सोमवंशी राजाओं का भी शासन रहा। बौद्ध शासकों ने मठ व संघ, जैन शासकों ने जैन मंदिर व गुफाएं, सनातन धर्मी शासकों ने हिन्दू मंदिर व जनता के लिए विशाल बांध बनवाए, जो सभी दर्शनीय हैं। चिल्का झील, नन्दनकानन प्राणी अभयारण्य, धौली शांति स्तूप, कोणार्क सूर्य मंदिर, चन्द्रभागा नदी, गंगासागर-समुद्र, रवीन्द्र मण्डप, साइन्स सेन्टर, राज्य संग्रहालय विशेष दर्शनीय हैं।

प्राचीन उत्तर व मध्यकालीन काल में भुवनेश्वर में जो भी मंदिर निर्मित हुए, उनकी कलात्मक सुन्दरता व भव्यता किसी को भी मंत्रमुग्ध करने के लिए पर्याप्त है। इन पर लगा प्रत्येक पत्थर ऐसा लगता है मानो वह कुछ न कुछ बोल रहा है। पुराने नगर में कई अन्य मंदिर भी हैं। सातवीं सदी से 13वीं सदी तक का कालखण्ड उड़ीसा में स्थापत्य व शिल्पकला का चरमकाल माना जाता है।

भुवनेश्वर के मंदिरों में वैसे तो रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, भरतेश्व , शत्रुघ्नेश्वर, केदारेश्वर, सिद्धेश्वर, अनन्त वासुदेव, परशुरामेश्वर, मुक्तेश्वर, राजारानी, लिंगराज आदि हैं, किन्तु इनमें से अन्तिम चार मंदिर उल्लेखनीय हैं। सभी विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न शैलियों में निर्मित हुए हैं। लिंगराज में ही पूजा-पाठ उत्सव होते हैं। बाकी वस्तुतः कला के नमूनों के रूप में ही दृश्यमान हैं।

परशुरामेश्वर मंदिर का निर्माण 650 ई. में हुआ माना जाता है, जिसका गर्भगृह प्राचीन है, परन्तु बाकी मंदिरों का जीर्णोद्धार 1903 ई. में हुआ है। सन् 950 ई. में निर्मित भुवनेश्वर मंदिर मध्यकालीन भव्य मंदिरों का लघुरूप है। दर्शनीय शिल्प वाला मंदिर दो प्रकार के पत्थरों एक लाल तो दूसरा राजराणियां से निर्मित है, जिसे राजारानी मंदिर के नाम से जाना जाता है।

प्राचीन भुवनेश्वर नगर का लिंगराज मंदिर एक विशाल मंदिर होने के साथ स्थापत्य व शिल्प में अद्वितीय मंदिर है। वस्तुतः यह आधा शिव व आधा विष्णु मंदिर माना जाता है, इसीलिए यहां बिल्वपत्र व तुलसी दल के साथ पूजा होती है। मंदिर परिसर के चारों ओर पत्थरों की ऊंची दीवार है। प्रथम बार देखने पर हर कोई इसकी भव्यता से दंग रह जाता है। इस पर जितनी बारीकी से काम हुआ है, वैसी आज कल्पना ही की जा सकती है। मंदिर के बाहर कई देव प्रतिमाएं स्थित हैं। मंदिर परिसर में ही लगभग छोटे-बड़े 150 अन्य मंदिर हैं। यहां से 16 कि.मी. दूर हीरापुर में 64 योगिनी मंदिर भी दर्शनीय हैं।

खण्डगिरि व उदयगिरि की जैन मुनियों की गुफाएं तथा खारवेल की गुफाएं सभी चट्टानों को काटकर व खोदकर निर्मित हैं। उदयगिरि में 18 गुफाएं हैं, जबकि खण्डगिरि में 15 छोटी-बड़ी गुफाओं के अतिरिक्त जैन मंदिर है। उदयगिरि की गुफाओं में हाथीगुफा (गोम्फा) व रानी गुफा (गोम्फा) विशेष उल्लेखनीय है।

भुवनेश्वर, पुरी मार्ग पर है। धौली पहाड़ नीचे है। दया नदी के समीप सम्राट अशोक के आदेश अंकित हैं। इसके समीप पत्थरों का तराशा गया हाथी का मुख है, जो इंगित करता है कि अशोक के काल में शिल्पकला कितनी उन्नत रही होगी। पहाड़ी पर सन् 1973 ई. में निर्मित एक विशाल बौद्ध विश्व शांति स्तूप है, जिसे एक जापानी महिला संत ने बनवाया था। बिहार के राजगीर में गृध कूट पर्वत पर इससे भी विशाल बौद्ध विश्वशांति स्तूप भी उन्हीं के द्वारा बनवाया गया था। नन्दनकानन भुवनेश्वर से 20 कि.मी. की दूरी पर है। यह जीव-जन्तुओं का उद्यान है। मौर्यकाल-चेदी राजवंश -कुषाण राजवंश-सातवाहन राजवंश-सोमराजवंश-गंगराजवंश यह क्रम कलिंग उत्कल पर शासन करने वालों का बनता है। इन्हीं के बीच में गुप्त राजवंश का भी शासन यहां रहा है। भुवनेश्वर से निकट ही विश्व प्रसिद्ध श्री जगन्नाथपुरी है, जहां अनेक दर्शनीय स्थल हैं।

-स्वामी गोपाल आनन्द बाबा

उज्ज्वल चरित्र से पड़ती है अमिट छाप

प्रकृति महान विभूतियों को गढ़ने में आरंभ से ही जुट जाती है और उन्हें कष्ट-कठिनाइयों की तपरूपी भट्ठी में झोंकने में तनिक भी दया नहीं दिखाती। पग-पग पर कठोर परीक्षाएं लेती है और अंततः उसे खरे सोने में परिवर्तित करके ही छोड़ती है।

मनुष्य की वक्तृत्व-कला नहीं, वरन उसका उज्ज्वल चरित्र ही लोगों पर स्थायी व अमिट छाप छोड़ने में सफल होता है और उन्हें अपने व्यक्तित्व को ढालने में मदद करता है। विश्व-इतिहास के स्मृतिपटल पर कभी-कभी ऐसे महापुरुष भी उत्पन्न हो जाते हैं, जो अपने पीछे आदर्शों एवं सिद्धांतों का जखीरा विरासत के रूप में छोड़ जाते हैं। इन्हें अपनाकर लोग युगों-युगों तक सुखी एवं समृद्ध जीवन का आनंद लेते हैं। ऐसे महापुरुषों को आरंभ में तो कष्ट-कठिनाइयां सहन करनी पड़ती हैं, किंतु वे सभी कष्ट आने वाले सुखद भविष्य के सत्परिणामों से सुख के रूप में परिणत हो जाते हैं। उसी सुखद भविष्य को सीढ़ी मानकर ऐसे लोग नित्य-निरंतर आगे ही बढ़ते जाते हैं और विश्व-मानवता के संदेशवाहकों में अग्रगण्य माने जाते हैं।

लगता है, प्रकृति महान विभूतियों को गढ़ने में आरंभ से ही जुट जाती है और उन्हें कष्ट-कठिनाइयों की तपरूपी भट्ठी में झोंकने में तनिक भी दया नहीं दिखाती। पग-पग पर कठोर परीक्षाएं लेती है और अंततः उसे खरे सोने में परिवर्तित करके ही छोड़ती है। लगता है, ईश्वर महान लोगों के साथ इस तरह का व्यवहार या व्यवस्था इसलिए करता है, ताकि वे भौतिक रिश्ते-नातों में उलझकर न रह जायें, वरन शाश्वत रिश्तों के लिए जियें।

जीवन निराशा एवं विषाद में नष्ट करने के लिए नहीं मिला है। उठो और निराशा, विषाद एवं दुःख को छोड़कर लोगों को ऊंचा उठाते हुए विश्वबंधुत्व की भावना को विस्तृत करो। जब व्यक्ति सचाई के रास्ते पर नीति, धर्म और सदाचार अपनाता है, तो उसके चारों ओर ईश्वर एक रक्षा कवच घेर देता है।

कहानी

रूपा

मैं घबरा गया। खतरा स्पष्ट था। कभी भी रूपा का बाप या उसके आदमी मेरे पास पहुँच सकते थे। मुझे अफसोस हुआ कि क्यों मैंने प्रारंभ में अनावश्यक ही रूपा के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी? उसी पर विश्वास करके तो उसने मुझे अब इस खतरे में डाल दिया है।

मेरी नियुक्ति जब उस छोटे कस्बे में हुई थी, तब मेरा ठीक तरह पहला परिचय रूपा से ही हुआ था। मैं अपने एक अदद सूटकेस के साथ जब उस कस्बे में बस से उतरा तो एक पनवाड़ी से किसी धर्मशाला के बारे में पूछा, जहाँ दो-तीन दिन रुककर अपने लिए किसी किराये के कमरे का प्रबंध कर सकूँ। उसने पता बतलाया भी, किन्तु उस समय मैं उस कस्बे से सर्वथा अपरिचित था। सो, रास्ते के बारे में तनिक विस्तार से पूछने लगा। तब, पनवाड़ी ने कहा, ''ठहरिए बाबूजी, आपको धर्मशाला ढूँढ़ने में परेशानी होगी। मैं आपके साथ एक मजदूर भेज देता हूँ। उसे दो रुपये दे दीजिए। कोई दिक्कत नहीं होगी।''

फिर उस पनवाड़ी ने आवाज दी, ''रूपा'' और कुछ ही क्षणों में भागती-सी दस-ग्यारह वर्ष की एक लड़की आ गयी। पनवाड़ी ने उससे कहा, ''जा, बाबूजी को धर्मशाला तक पहुँचा आ।''

इस पर रूपा ने झट से मेरा सूटकेस उठाया और एक ओर चल दी। मैं भी उसके पीछे चल दिया। लड़की के वस्त्र जगह-जगह से फटे हुए थे। कहीं-कहीं पैबन्द लगे थे और कहीं वे भी नहीं। हल्के साँवले रंग का दुबला-पतला शरीर और बेहद रूखे गन्दे से बाल। छोटे कस्बे में एक छोटी लड़की को मजदूरी करते देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ।

धर्मशाला अधिक दूर नहीं था। वहाँ पहुँचकर व्यवस्थापक से संक्षिप्त-सी बातचीत की और उसने मुझे एक कमरा खोल कर दे दिया। रूपा ने मेरा सूटकेस उस कमरे में ले जाकर रख दिया और मजदूरी की प्रतीक्षा में खड़ी रही। मैंने सरसरी तौर से कमरे में चारों ओर नजर डालकर रूपा से पूछा, ''तुम यहाँ रोजाना मजदूरी करती हो ?''

''हाँ बाबूजी, पेट के लिए करनी ही पड़ती है।'' उसने सपाट लहजे में संक्षिप्त-सा उत्तर दिया। लगा, जैसे वह लौटने के लिए उतावली हो रही हो, शायद किसी नयी मजदूरी की आशा में।

रूपा का यह दार्शनिक उत्तर मुझे अन्दर तक बेध गया। जिस उम्र में उसे स्कूल जाकर अपना पाठ पढ़ना चाहिए था, उसी उम्र में वह पेट भरने के लिए दूसरों का बोझा सिर पर लिये फिर रही है। मन कुछ सोचने लगा, किन्तु इसी बीच रूपा की आवाज ने उसे झटक दिया। कह रही थी, ''बाबूजी, जल्दी कीजिए देर हो रही है।''

मैंने कुछ सोचते हुए जेब से दस रुपये का नोट निकाला और उसकी तरफ बड़ा दिया। रूपा ने नोट की तरफ देखते हुए कहा, ''मेरे पास खुल्ले नहीं हैं बाबूजी!''

''उसकी आवश्यकता भी नहीं हैं।'' मैंने कहा, ''यह पूरे दस रुपये तुम्हारी मजदूरी के हैं।''

''लेकिन मेरी मजदूरी तो केवल दो रुपये की है, दस रुपये की नहीं।'' रूपा ने कुछ आश्चर्य और अविश्वास मिश्रित शब्दों में कहा।

मैंने दस रुपये का नोट लगभग जबर्दस्ती उसे थमाते हुए कहा, ''तुमने जो मेहनत की, उसके दस ही रुपये बनते हैं, दो रुपये नहीं और मैं किसी की भी मेहनत के पैसे नहीं रखता।''

इसके उपरांत रूपा चुपचाप चली गई।

कुछ ही दिनों बाद मैंने अपने लिए किराये पर एक कमरा ले लिया। उस समय तक विवाह नहीं हुआ था। सो अकेला ही था। इसलिए लम्बे-चौड़े मकान की आवश्यकता भी नहीं थी। फिर हर तीसरे-चौथे दिन किसी न किसी दौरे के सिलसिले में इधर-उधर बाहर जाना पड़ता था, सो वहाँ अधिक लम्बे समय तक रुकने का अवसर भी नहीं मिलता था।

बाहर आने-जाने के सिलसिले में मुझे अकसर ही अपना छोटा-मोटा सामान इधर-उधर ले जाना पड़ता था। सामान्य रूप से तो अपना सामान उठाने में मुझे कभी हीनता का बोध नहीं हुआ, किन्तु रूपा से परिचय होने के बाद मुझे ऐसा लगने लगा था, जैसे अपना सामान स्वयं उठाकर मैं किसी मजदूर का हक हड़प रहा हूँ। सो, जब भी

रूपा नजर आ जाती, मैं उसी से अपना सामान उठवाकर ले जाता। एक दिन मैंने उससे पूछा, ''क्यों रूपा क्या तुम्हारे माता-पिता या भाई-बहन कोई नहीं हैं, जो इस नन्हीं उम्र में तुम्हें मजदूरी करनी पड़ रही है ?''

प्रश्न सुनकर रूपा कुछ देर खामोश रही। फिर बोली, ''होने को तो माँ भी है और बाप भी। हाँ भाई-बहन कोई नहीं है। अच्छा ही हुआ कि मैं अपने माता-पिता की अकेली सन्तान हूँ। अन्यथा मेरे भाई-बहनों को भी यही सब कुछ दुःख सहन करना पड़ता, जो मैं कर रही हूँ।''

''क्या करते हैं तुम्हारे पिताजी ?'' मैंने सहानुभूति व्यक्त करते हुए पूछा।

''कुछ भी तो नहीं करते।'' रूपा ने तनिक तैश में आते हुए कहा, ''बस दिन-रात शराब पीते हैं और जब उसका इंतजाम नहीं हो पाता तो हम माँ-बेटी पर बरस पड़ते हैं। कभी लात-घूंसों से और कभी डंडों से। उसकी शराब की जरूरत को पूरा करने के लिए माँ सुबह से शाम तक कई घरों में चौंका-बर्तन का काम करती है और मैं यहाँ मजदूरी करती हूँ। हमारी कमाई का ज्यादातर हिस्सा तो उसी की भेंट चढ़ जाता है और जो कुछ बचता है, उसी में से माँ दो वक्त की रोटियों का इंतजाम कर लेती है।''

रूपा की असली व्यथा मुझे अब समझ में आई। पूछा, ''लेकिन रूपा, अगर तुम्हारे पिता की यही स्थिति है तो तुम लोग उनसे अलग क्यों नहीं रहते ?''

''अलग रहने दे, तब न ?'' रूपा ने बतलाया, ''न तो वह स्वयं कहीं निकलता है और न हमें कहीं दूसरी जगह रहने देता है। एक-दो बार हमने उससे अलग रहने की कोशिश की तो इधर-उधर से मालूम करके वह हमारे यहाँ पहुँच गया और हम दोनों को पीटते-पीटते लहूलुहान कर दिया।''

मैंने रूपा को सांत्वना देने की कोशिश की और अपनी ओर से यथासंभव मदद का आश्वासन भी दिया। किन्तु मुझे वह समझ में नहीं आ रहा था कि इस मामले में मैं, उसकी क्या सहायता कर सकता था ? निश्चित-ही एक शराबी से झगड़ा मोल लेने का साहस मुझमें नहीं था।

इसके बाद मैंने रूपा में रुचि लेना बन्द कर दिया। यथासम्भव मैं अपना सामान खुद ही अपने हाथों में उठा लेता या किसी दूसरे मजदूर को ले लेता। हाँ, जब कभी रूपा स्वयं आगे आकर मेरा सामान उठा लेती तो उसे मना करने की हिम्मत भी नहीं होती। उसकी भोली मासूम आँखों में देखकर लगता, जैसे वह पूछ रही हो, ''बाबूजी, मुझसे ऐसी क्या गलती हो गई है, जिसकी वजह से आप इस तरह मेरी उपेक्षा कर रहे हैं ?'' ऐसे अवसर पर रूपा अकसर खामोश रहकर ही मेरा सामान पहुँचा देती और अपनी मजदूरी लेकर चुपचाप लौट जाती। कभी-कभी वह अपने परिवार का कोई किस्सा छेड़ भी देती तो मैं उसे यों ही ''हाँ हूँ'' करके टाल देता। मुझे वास्तव में यह डर लगने लगा था कि कहीं उसका शराबी पिता किसी दिन आकर मुझसे ही झगड़ा न कर बैठे। एक सामान्य संभ्रान्त व्यक्ति की सहज कायरता ने मुझे अपने चंगुल में जकड़ लिया था।

इसी प्रकार एक डेढ वर्ष का समय निकल गया। एक दिन संध्या के झुरमुटे में रूपा बदहवास-सी मेरे कमरे पर आ गई। इससे पहले वह इस तरह अपने आप कभी मेरे पास नहीं आई थी। मैं किसी संभावित खतरे की आशंका से उसकी तरफ देखने लगा। वह लगभग रोती हुई कहने लगी, ''मुझे और मेरी माँ को बचा लीजिए बाबूजी! मेरा राक्षस बाप दो-तीन आदमियों को लेकर घर आया है। उसने उनसे अपनी शराब के लिए धन लिया है और अब उसके बदले में वह मुझे और मेरी माँ को उन्हें बेच देना चाहता है। मेरी माँ को तो उन्होंने पकड़ कर बांध दिया है और मैं किसी तरह नजर बचाकर उनके चंगुल से छूटकर यहाँ तक आ गई हूँ। अब आपका ही सहारा है बाबूजी, किसी भी तरह हम लोगों को बचा लीजिए।''

मैं घबरा गया। खतरा स्पष्ट था। कभी भी रूपा का बाप या उसके आदमी मेरे पास पहुँच सकते थे। मुझे अफसोस हुआ कि क्यों मैंने प्रारंभ में अनावश्यक ही रूपा के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी ? उसी पर विश्वास करके तो उसने मुझे अब इस खतरे में डाल दिया है। मैंने किसी तरह उसे टालते हुए कहा, ''देखो, रूपा इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? यह तो तुम्हारा पारिवारिक मामला है। तुम्हें अपने पिता से यदि कोई शिकायत है तो पुलिस थाना चली जाओ। वे तुम्हारी मदद करेंगे ?''

(क्रमशः)

- योगेश चंद्र शर्मा